बलवन्त सिंह और अन्य

बनाम

बिहार राज्य

(Balwant Singh and others)

Vs.

The State of Bihar

(4 अक्तूबर, 1977)

(न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर, जसवन्त सिंह और डी० ए० देसाई)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 321—अभियोजन वापस लेना—अभियोजन वापस लेने का मामला लोक अभियोजक के विवेकाधिकार का मामला है जिसे न्याय प्रशासन के हित में अपनी स्वतन्त्र राय बनानी चाहिए—जिला मजिस्ट्रेट या पुलिस अधीक्षक अभियोजक को अभियोजन वापस लेने के लिए आदेश नहीं दे सकते—मजिस्ट्रेट को भी कार्यपालिक दवाब के अधीन नहीं होना चाहिए—अभियोजन चलाते समय यह राज्य का कर्त्तव्य है कि वह उसके बारे में निश्चित धारणा अपनाए ।

एक लम्बित दाण्डिक मामले में जिला मजिस्ट्रेट के निदेश पर लोक अभियोजक के मामले को वापस लेने की अनुज्ञा के लिए आवेदन किया और मजिस्ट्रेट ने जिसके समक्ष मामला लम्बित था यह कहते हुए कि जिला मजिस्ट्रेट ने लोक अभियोजक को मामला वापस लेने का निदेश दिया है अभियोजन वापस लेने की अनुज्ञा दे दी। मजिस्ट्रेट ने यह भी कहा कि न्याय प्रशासन के लिए इस मामले में लोक नीति अन्तर्वलित नहीं थी। उच्चतम न्यायालय ने इजाजत देने से इन्कार करते हुए,

अभिनिर्धारित—लोक अभियोजक के लिए, जब वह किसी अभियोजन को वापस लेने का विनिश्चय करता है, एकमात्र महत्व न्याय प्रशासन का होता है न कि राजनैतिक पक्षपात का, न ही दलीय दबाव का और न ही इसी प्रकार की किसी अन्य बात का। वस्तुतः लोक न्याय के हित

सर्वोपरि विचार होने के कारण वे किसी विशेष मुकदमें के विधिक न्याय से श्रेष्ठ और बढ़कर होते हैं। वापस लेने का विनिश्चय करने के लिए कानूनी दायित्व लोक अभियोजक में निहित होता है। इसमें सुलह नहीं की जाती और इसको उन लोगों के पक्ष में बदला नहीं जा सकता जो प्रशासन पक्ष में उसके ऊपर हों। दण्ड प्रक्रिया संहिता लोक अभियोजक का एकमात्र पथ-प्रदर्शक है और उसे दण्ड प्रक्रिया संहिता के निर्देश में ही अपना मार्गदर्शन करना होता है। इस प्रकार मार्गदर्शित होकर जिस विचार को उसे महत्व देना चाहिए या वह यह है कि क्या अभियोजन को वापस लेने या चलने देने से लोक न्याय का वृहत्तर हेतुक पूरा होगा या विलम्बित होगा। लोक न्याय की किसी विशेष मामले में न्याय की अपेक्षा अधिक विस्तृत धारणा है। यहां पर लोक अभियोजक को अभियोजन वापस लेने के लिए समावेदन करने का आदेश दिया गया है। जिला मजिस्ट्रेट के लिए ऐसा करना ठीक नहीं है। वास्तव में लोक अभियोजक को इसके बारे में आदेश देना ठीक नहीं है। यह पूर्णतः लोक अभियोजक के विवेकाधिकार के अधीन है। जिला मजिस्ट्रेट को लोक अभियोजक के ध्यान में सामग्री लाने और उसे इस बात का सुझाव देने की छूट है कि क्या अभियोजन को वापस ले लिया जाए या नहीं। जहां पर वह केवल सिफारिश कर सकता है वहां वह आदेश नहीं दे सकता। लोक अभियोजक और मजिस्ट्रेट द्वारा विवेकाधिकार का अभ्यर्पण दुर्भाग्यपूर्ण है। जब कि न्यायालय के समक्ष कोई मामला लम्बित हो तो उसे चौकस रहना चाहिए और वापस लेने के आवेदन के रूप में, जिसके साथ काफी काग़ज लगे हों कार्यपालिका के सुझाव के वशीभूत नहीं हो जाना चाहिए। फिर भी, राज्य को पहले यह कह कर कि विचारण के लिए सही मामला है और फिर इस बारे में परावर्तन करके कि द्वितीय अन्वेषण पर मामला झूठा पाया गया है न्यायालय को महत्वहीन नहीं बनाना चाहिए। उक्त परिस्थितियों में इजाजत देने से इन्कार किया गया। (पैरा 2)

दाण्डिक अपीली अधिकारिता : 1977 का विशेष इजाजत पिटीशन, (दाण्डिक) संख्या 863.

1977 के दाण्डिक प्रकीर्ण मामला संख्या 824 में पटना उच्च न्यायालय के तारीख 28 मार्च, 1977 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपील।

पिटीशनरों की ओर से श्री एस० के० सिन्हा

अभिलेख अधिवक्ता

पिटीशनरों की ओर से श्री एस० के० सिन्हा

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर ने दिया।

न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर—

हम इन कारणों से, जिनको हम संक्षेप में निर्दिष्ट करेंगे, इजाजत देने के लिए प्रवृत्त नहीं हैं जिससे कि इसी प्रकार की गलती बाद में न की जा सके।

2. लोक अभियोजक के लिए, जब वह किसी अभियोजन को वापस लेने का विनिश्चय करता है, एकमात्र महत्व न्याय प्रशासन का होता है न कि राजनैतिक पक्षपात का, न ही दलीय दबाव का और न ही इसी प्रकार की किसी अन्य बात का। वस्तुतः, लोक न्याय के हित सर्वोपरि विचार होने के कारण वे किसी विशेष मुकदमे के विधिक न्याय से श्रेष्ठ और बढ़कर होते हैं। उदाहरणार्थ साम्प्रदायिक शत्रुता जो सौहार्दपूर्ण ढंग से तय की जा सकती थी एक या दो लम्बित अभियोजनों के कारण पुनः नहीं उभरनी चाहिए थी। श्रम विवाद जिनके कारण दाण्डिक मामले उभर सकते हैं, जब तय हो जाएं, सम्भवतः यह एक अन्य उदाहरण है जहां पर वृहत अभिधान में लोक न्याय का हित शायद अभियोजन वापस लेने से पूरा हो जाता है। अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं जहां पर मामले के गुणागुण के अतिरिक्त भी अभियोजन वापस लेने से लोक न्याय किया जा सकता है। प्रस्तुत मामले में स्थिति बिलकुल भिन्न है। यहां पर एक सामान्य दाण्डिक मामला है। प्रथम इत्तिला देने वाले ने पुलिस को सूचना दी, अन्वेषण हुआ और आरोप पत्र फाइल किया गया। इसके पश्चात विद्वान मजिस्ट्रेट ने जिसने मामले का विचारण किया आरोप विरचित किए। किसी प्रकार से राज्य के खुफिया विभाग ने संदिग्ध रूप से रहस्यमय प्रक्रिया द्वारा द्वितीय अन्वेषण करके अभियोजन पक्ष के कथन की सच्चाई का पता लगा लिया। उस समय दाण्डिक मामला पहले से लम्बित था और मामला मजिस्ट्रेट के पास था। पुलिस के लिए द्वितीय अन्वेषण क्रम शुरू करने का कोई कारण नहीं था। तिस पर भी, जिला मजिस्ट्रेट ने पुलिस अधीक्षक की रिपोर्ट पर मामले की जांच की और इस बात के लिए उसका समाधान हो गया कि द्वितीय अन्वेषण प्रथम अन्वेषण की अपेक्षा अधिक सत्य था और इसलिए उसका यह निष्कर्ष था कि जो मामला पुलिस ने न्यायालय के समक्ष चलाया था, झूठा था और उसने लोक अभियोजक को मामले को वापस लेने के लिए निर्दिष्ट किया। वापस लेने का विनिश्चय करने के लिए कानूनी दायित्व लोक अभियोजक में

निहित होता है। इसमें सुलह नहीं की जाती और इसको उन लोगों के पक्ष में बदला नहीं जा सकता जो प्रशासन पक्ष में उससे ऊपर हों। दण्ड प्रक्रिया संहिता लोक अभियोजक का एकमात्र पथप्रदर्शक है और उसे दण्ड प्रक्रिया संहिता के निर्देश में ही अपना मार्गदर्शन करना होता है। इस प्रकार मार्गदर्शित होकर जिस विचार को उसे महत्व देना चाहिए वह यह है कि क्या अभियोजन को वापस लेने या चलने देने से लोक न्याय का वृहत्तर पूरा होगा या विलम्बित होगा। जैसा कि हमने पहले ही स्पष्ट कर दिया है लोक न्याय की किसी विशेष मामले में न्याय की अपेक्षा अधिक विस्तृत धारणा है। यहां पर लोक अभियोजक को अभियोजन वापस लेने के लिए समावेदन करने का आदेश दिया गया है। जिला मजिस्ट्रेट के लिए ऐसा करना ठीक नहीं है। वास्तव में लोक अभियोजक को इसके बारे में आदेश देना ठीक नहीं है। यह पूर्णतः लोक अभियोजक के विवेकाधिकार के अधीन है। जिला मजिस्ट्रेट को लोक अभियोजक के ध्यान में सामग्री लाने और उसे इस बात का सुझाव देने की छूट है कि क्या अभियोजन को वापस ले लिया जाए या नहीं। जहां पर वह केवल सिफारिश कर सकता है वहां आदेश नहीं दे सकता। इस मामले में, तथ्य इस बात को प्रदर्शित करते हैं कि लोक अभियोजक ने आज्ञा का पालन किया और कार्यवाही नहीं की और इसलिए उसमें विहित कानूनी दायित्व का सही रूप से प्रयोग नहीं किया गया। यदि उसे दी गई सामग्री के आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि मामला वापस लिए जाने के काबिल है तो वह उस बारे में कार्यवाही कर सकता है। इसी प्रकार से, न्यायालय का आदेश हमारे लिए एक पहेली है। आदेश में यह कहा गया है कि न्यायालय ने अभिलेखों का अनुशीलन किया है, जिला मजिस्ट्रेट ने लोक अभियोजक को निर्दिष्ट किया है, लोक अभियोजक ने भी सम्यक रूप से आज्ञा पालन किया है और जिला मजिस्ट्रेट ने भी इस बात का उल्लेख किया है कि पुलिस अधीक्षक ने उसे "मामले को वापस लेने" के बारे में रिपोर्ट दी है। अनुज्ञा देने की वांछनीयता या अन्यथा के सम्बन्ध में स्वतन्त्र निर्णय कुछ नहीं है। यह विलक्षण बात है कि लोक अभियोजक यह कहता है कि न्यायालय ने बार-बार यह कहा है कि न्याय प्रशासन के लिए इस मामले में लोक नीति अन्तर्वलित नहीं है। यही एक कारण है जिससे कि विधि को अपना कार्य करते रहना चाहिए। क्योंकि न्याय की साधारणतः

1977(10) eILR(PAT) SC 1

यह अपेक्षा रहती है कि प्रत्येक मामला अपने लक्ष्य पर पहुंचना चाहिए और मार्ग में उसमें विघ्न नहीं डालना चाहिए। यदि न्याय प्रशासन के सम्बन्ध में कोई नीति सम्बन्धी विचार अभियोजन को वापस लेने को न्यायोचित ठहराता है तो न्यायालय अनुज्ञा दे सकता है न कि उस समय जबकि उसमें न्याय प्रशासन के सम्बन्ध में कोई लोकनीति अन्तर्वलित न हो। हमारा यह विचार है कि लोक अभियोजक और मजिस्ट्रेट द्वारा विवेकाधिकार का अभ्यर्पण दुर्भाग्यपूर्ण है। जब कि न्यायालय के समक्ष कोई मामला लम्बित हो तो उसे चौकस रहना चाहिए और वापस लेने के आवेदन के रूप में, जिसके साथ काफी कागज लगे हों कार्यपालिका के सुझाव के वशीभूत नहीं हो जाना चाहिए। फिर भी, राज्य को पहले यह कह कर कि विचारण के लिए सही मामला है और फिर इस बारे में परावर्तन करके कि द्वितीय अन्वेषण पर मामला झूठा पाया गया है न्यायालय को महत्वहीन नहीं बनाना चाहिए। इन परिस्थितियों में हम इजाज़त देने से इन्कार करते हैं।

इजाज़त देने से इन्कार कर दिया गया।

स०/क०